अज़ादारी के दिनों में हमने क्या किया?

आयतुल्लाह सै० काज़िम नक़वी साहब क़िब्ला
अनुवादः बिन्ते ज़हरा नक़वी नदल हिन्दी साहेबा

यूँ तो इस नीले आसमान के नीचे हज़ारों बेगुनाहों के ख़ून बहे और बहते रहेंगे। दुनिया हज़ारों इन्क़ेलाबों की गवाह बनी और बनती रहेगी। ज़मीन लाखों इन्सानों के ख़ून से लाल हुई और होती रहेगी, मगर याद रखिये किसी ख़ून का रंग हमेशा बाक़ी न रह सका। यक़ीनन इन्क़ेलाबों ने आकर दुनिया में हलचल मचाई मगर कुछ ज़माने के बाद सुकून हो गया। इस काएनात में हज़ारों इन्सानों के मातम की सफ़ें बिछीं मगर फिर उठ गयीं किसी हादसे का असर हमेशा बाक़ी रहने वाला न बन सका लेकिन न जाने कर्बला की दास्तान में, नैनवा के दर्दभरे क़िस्से में कौन सा दर्द भरा हुआ है जिसका असर हर दिल में और जिस का ख़याल आज भी हर दिमाग़ में है। आख़िर इसमें क्या राज़ है? हक़ीक़त यह है कि दुनिया में ख़ून ज़्यादा बहा है, आदमी ज़्यादा मारे गये हैं, माल और सामान ज़्यादा लूटा गया है मगर दिल के पाक और अज़ीज़ जज़्बात की क़ुर्बानी इतने ज़्यादा असर और नतीजे वाली कहीं नहीं सामने आई जैसी कर्बला की ज़मीन पर रसूल[स०] के नवासे ने पेश की। यही वजह है कि दुनिया के इन्सानों का ग़म मनाया गया मगर कुछ दिनों के लिए लेकिन हुसैने मज़लूम[अ०] का ग़म ज़माने और जगह की क़ैदों से आज़ाद है। अज़ल से ही उनके मातम की सफ़ बिछी, आज भी उनकी अज़ादारी क़ायम है और आइन्दा ज़माना भी रौशन नज़र आ रहा है मगर क्या इमाम हुसैन[अ०] का ग़म उन पर सिर्फ़ चार आँसू बहा लेना, हाय वावेला मचा लेना है? नहीं, नहीं, ऐसा नहीं। अज़ादारी का अस्ल मक़सद यह है कि जिस रास्ते में उन्होंने जान दी, जिस मक़सद के लिए उन्होंने घर-बार लुटा दिया और जिस रास्ते में उन्होंने ज़ाहिरी इज़्ज़त और आबरु तक को अज़ीज़ न किया, उस रास्ते को हम समझें और चलते रहने की कोशिश करें, उनके मक़सद को जानें और अमल से उनके मक़सद की हिफ़ाज़त करने वाले हों अगर ऐसा है तो अज़ादारे हुसैन[अ०] हैं वरना सूरत से हैं अपनी सीरत से नहीं।

कर्बला की जंग को जीतने वाला हुसैन[अ०] दुनिया को इन्सानियत की सही क़द्र और क़ीमत बताने के लिए उठा था, उसका मक़सद इन्सानियत और उसकी शराफ़त और फ़ज़ीलत को हैवानियत और बहीमियत के शिकन्जों से आज़ाद कराना था। वह दुनिया के लिए हक़ और सच्चाई का पैग़ाम लाने वाले थे। उनकी ज़िन्दगी अज़ादी के साथ अल्लाह की बन्दगी का एक सांचा थी जिसमें हर अक़्लमन्द अपनी सीरत को ढाल सकता है, उनका किरदार इन्सानियत के लिए एक बलन्द मेयार था, जिसकी कसौटी पर कस कर इन्सान के तमाम काम कमाल की मेराज पर पहुँच सकते हैं। वह सच्चों की सच्चाई के दिल की हिम्मत, जोशे अमल और जुरअते अख़्लाक़ के लिये हिदायत के मीनार हैं इसे यूँ समझिये कि हुसैन[अ०] नाम है ज़मीर की आज़ादी का, हुसैन[अ०] नाम है बातिल हुकूमत से बग़ावत का। यह वह बलन्द ख़ूबियाँ हैं जो इमाम हुसैन[अ०] की ज़ात से जुड़ गईं और उनकी हस्ती इनसे जुड़ गई। वह, वह आज़ादी पसन्द थे जिनके

नाम की याद आज़ादी की आवाज़ के साथ है। वह, वह हक़ वाले थे जिन्होंने हक की अवाज़ से आवाज़ मिलाई और हक़ हमेशा उनका साथी बन गया। हुसैन[अ०] वह थे जिन्होंने यज़ीद के ज़माने में नहीं बल्कि शैतानी व इब्लीसी ज़माने में झुके हुए इस्लाम को सीधा करके अपने बाद आने वाले हक़ के दावेदारों के दिलों में जुरअत और हिम्मत पैदा कर दी कि वह फ़ासिक़ और फ़ाजिर, जब्बार और क़ह्हार बादशाहों के मुक़ाबले में जम कर और उनसे न डर कर ईमान और इस्लाम की ***"हल मिन नासिरिन यन्सुरना"*** की आवाज़ पर लब्बैक कह सकें। वरना याद रखिये कि अगर 61[हि०] में बातिल के मुक़ाबले में यह हक़ की आवाज़ धीमी हो जाती तो क़यामत तक के लिये हक़ बातिल के सामने, शराफ़ात, ज़लालत के सामने, इन्सानियत हैवानियत के सामने और कहने दीजिये कि उलूहियत शैतानियत के सामने देखने में झुक जाती। हक़ीक़त ये है कि इस लाचारी और लावारिसी के ज़माने में अगर हक़ और सदाक़त, शराफ़त और आज़ादी और इन्सानियत और उलूहियत ने किसी के दामन में पनाह ली है तो वह हुसैन[अ०] थे।

यह था वह हुसैन[अ०] जिसने अल्लाह के बाक़ी मक़सद में जान निसार करके फ़ना का लिबास उतारा और बक़ा की चादर ओढ़ी। अब भला मुमकिन था कि हुसैन[अ०] की याद दुनिया से मिट जाये? नहीं, हुसैन[अ०] के ज़िक्र से अल्लाह की याद ताज़ा है। यह थे वह हुसैन[अ०] जिनकी तरफ़ आज हम अपने को मन्सूब करते हैं और उनके जाँनिसार, फ़िदाकार और चाहने वाले होने का दावा करते हैं।

मगर याद रखिये, मुहब्बत की कसौटी इताअत पर है अगर मुहब्बत के साथ-साथ इताअत भी है तो जानिये कि मुहब्बत का हक़ अदा हुआ, वरना ज़बानी मुहब्बत करने वाले बहुत हैं। यह अज़ादारी का ज़माना हमारे लिये एक अमल करने का नमूना था। मुहब्बत का तक़ाज़ा है कि अगर एक तरफ़ हमारी आँखें ग़म में आँसुओं से भरी हैं तो दूसरी तरफ़ दिल में भी ग़म और अफ़सोस का माहौल होना चाहिए। अगर मातम में हमारे सीनों पर हाथ पड़ते तो इस ख़याल के साथ कि यह मातम की आवाज़ है अगर मौक़ा आया तो इन्हीं हाथों से तलवारों की झन्कार की सदा पैदा होगी।

हम अगर काला लिबास पहने थे तो इस यक़ीन के साथ होते कि तौ सही दुनिया को इस ग़म में काले लिबास वाला बना के रहें। यक़ीनन हमारे घरों में मातम की सफ़ बिछी लेकिन हक़ जब अदा होता कि उसके साथ दिल भी मातमी बने होते। ग़म में असर जब होता कि नौहे और रोने की अवाज़ें घर और दीवारों से न टकरातीं बल्कि दिल की गहराईयों में उतर जातीं। फिर हम इस क़ाबिल थे कि हुसैन[अ०] का पुरसा उनकी माँ फ़ातिमा ज़हरा[अ०] को देते।

अज़ा के दिन ख़त्म हुए। हुसैन[अ०] के मानने वालों! अब तुम ज़रा ख़ुद ही तन्हाई में बैठ कर सोचो कि तुमने कितना असर लिया? तुम्हारे दिलों में कितनी हिम्मत, कितना अमल का जोश पैदा हुआ? ख़ुदा करे ीरे-ीरे बात के साथ अमल भी सही हो और यह ज़बानी मुहब्बत के दावे अमल करने वाले बन जायें। क्या दिन होंगे वह जब हुसैन[अ०] के मानने वालों के दिल में वही जोश, वही तड़प, वही हौसला होगा जो 61[हि०] में आशूर के दिन कर्बला की ज़मीन पर उन बहत्तर हुसैनी जाँनिसारों के दिल में था। ■■■